

वैदिक कालीन राजतन्त्रात्मक व्यवस्था : एक अध्ययन

सारांश

सैन्धव संस्कृति के विनाश के बाद भारत में जिस नवीन सभ्यता का विकास हुआ उसे वैदिक अथवा आर्य सभ्यता कहते हैं। भारत का इतिहास एक प्रकार से आर्य जाति का इतिहास है। आर्य राजनीतिक रूप से बड़े संगठित थे। आर्य कई कबीलों एवं जनो में विभक्त थे। इनमें पाँच जनो का नाम अक्सर मिलता है। अनु, द्रह्य, पुरु, यदु, तुर्वस। इन्हें 'पञ्चजन्य' कहा जाता है। जन के अधिपति को राजा कहा जाता था। राजनीतिक संगठन की सबसे छोटी इकाई कुल या परिवार होता था। कई परिवार मिलकर ग्राम बनता था। ग्राम से बड़ी इकाई 'विश' तथा विश से 'जन' का निर्माण होता था। ऋग्वेद में समान्यतः राजतन्त्र का ही प्रचलन था। राजा को 'जन का रक्षक' (गोप्ता जनस्य) तथा दुर्गा का भेदन करने वाला (पुराभन्ता) कहा गया है। युद्ध के वातावरण में सेना व जाति का नेतृत्व करने के लिए राजा का उदय हुआ। इस समय के राज्य आपस में लड़ते थे। इसका प्रमाण दशराज युद्ध से मिलता है। जिसमें भरत कुल के राजा सुदास ने परुष्णी नदी के किनारे दस कुल के राजाओं को परास्त किया था। वेदों में राजा का बड़ा यशोगान किया गया है। जनता राजा को पितृवत समझती थी। ऋग्वैदिक जन के राजा का महत्वपूर्ण कार्य प्रजा का रक्षण तथा शान्ति बनाये रखने का था। वैदिक साहित्य से पता चलता है कि उसे विधि एवं न्याय प्रशासन सम्बन्धि अधिकार प्राप्त थे। ऋग्वैदिक काल में राजा में देवत्व का अंश नहीं समझा जाता था। जनता ही उसका निर्वाचन करती थी परन्तु धीरे धीरे उसमें देवत्व का अंश समझा जाने लगा। उत्तर वैदिक काल तक तो राजा का पद वशानुगत हो गया। उसके अधिकार एवं शक्तियाँ बढ़ गईं। ऋग्वैदिक काल का राजा निरंकुश नहीं होता था। उस पर सभा व समिति का नियन्त्रण था। इसके अलावा राजा ऋत के अनुसार नैतिक नियमों का पालन करता था एवं ऋत की परम्पराओं का उल्लंघन कभी नहीं करता था। यदि राजा धर्मानुसार कर्तव्यों का पालन नहीं करता था तो समिति उसे पदच्युत करने का अधिकार रखती थी। अतः हम वैदिक राजा को स्वेच्छाचारी या अत्याचारी नहीं पाते। वह प्रजा का रक्षक, प्रजा का पिता, सेवक व हितों का रक्षक माना जाता है। राजा प्रशासन के संचालन के लिए अधिकारियों की नियुक्ति भी करता था, जो प्रशासन में राजा को सहयोग करते थे। जिनमें पुरोहित, सेनानी, ग्रामणी प्रमुख थे।

मुख्य शब्द : जन, जनपद, कुल, विश, ऋग्वैदिक, राजतन्त्र, सेनानी, ग्रामणी, बलि, रत्नि स्पश, राजन्, एकराट, ऋत।

प्रस्तावना

प्रारम्भिक वैदिक काल में समस्त आर्य जाति अनेक 'जनो' में विभक्त थी और प्रत्येक 'जन' का अलग नेता या राजा होता था। फलतः इस भूखण्ड में अनेक छोटे-बड़े राज्य थे, जो आपस में या अन्य आर्यन्तर जातियों के साथ निरन्तर युद्धरत रहा करते थे। ऋग्वेद में ही प्रायः 20-21 जनो का उल्लेख मिलता है। इनमें पाँच जनो के नाम अक्सर मिलते हैं। अनु, द्रह्य, यदु, पुरु, तुर्वस। इन्हें 'पञ्चजन' कहा गया है। इस काल में राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। इतिहासकार एच. आर. घोषाल का मत है कि प्रारम्भ में उत्तरापथ में अनेक छोटे छोटे राज्य थे। परन्तु उनमें उत्तरवैदिक काल की तरह फूट एवं वैमनस्य नहीं था। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि "ऋग्वैदिक कालीन भारत में राजनीतिक एकता का पूरे वेग से विकास हो रहा था" वैदिक युग के जन के प्रमुख के लिए हमें 'राजन्' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'राजन्' का प्रायः वरण किया जाता था। ऋग्वेद में एक अन्य स्थल पर विशो द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख मिलता है।¹ ऋग्वेद में कुलगत राजाओं का उल्लेख मिलता है पर सम्भवतः वह आरम्भ में अपनी वीरता एवं प्रभावोत्पादक गुणों के आधार पर ही इस पद पर निर्वाचित होता था। निर्वाचन में 'विश' तथा राजकुल व अन्य अभिजात कुल के लोग भाग लेते थे। इसकी पुष्टि ऋग्वेद से भी होती है।² डॉ.



संजीव कुमार

सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
से.ने.म.टी.राजकीय स्नातकोत्तर
महिला महाविद्यालय,
झुंझुनू, राजस्थान, भारत

अल्तेकर की धारणा है कि सम्भवतः साधारण जनता निर्वाचन में सम्मिलित नहीं होती थी। निर्वाचन के समय कभी-कभी विवाद भी हो जाया करता था तो उनके परिणामस्वरूप राजा को सिंहासन भी छोड़ना पड़ता था। अतः डॉ. ए.एस. अल्तेकर इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं, "निर्वाचन भी यदा कदा ही हुआ करता था, साधारणतः सबसे प्रतिष्ठित कुल के सबसे वयोवृद्ध व्यक्ति को नेता मानकर राजा के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता था।³ अथर्ववेद में भी एक स्थल पर विशों द्वारा राजा के वरण की कामना की गई है।

त्वां विशो वृषणं राज्याय प्रदिशः पंच देवी।

वर्षन् राष्ट्रतः ककुदि श्रेयरेव ततो न उग्रा विभज वसूनि।⁴

राजा के वरण या निर्वाचन के सम्बन्ध में अथर्ववेद के निम्नलिखित मंत्र बड़े महत्व के हैं:- "सहर्षं हम तुम्हारा अपने अन्दर आह्वान करते हैं। तुम हमारे बीच अविचल रूप से व ध्रुव होकर स्थित रहो। सब राजा तुम्हें चाहे, तुमसे राष्ट्र का अधिकार कभी छीनना न पड़े। यहीं रहकर तुम उत्कर्ष करो, कभी तुम्हारा पतन न हो, कभी तुम विचलित न हो, इन्द्र के समान तुम ध्रुव होकर रहो और इस राष्ट्र को धारण करो"⁵ इस युग में जिस व्यक्ति का 'राजन्' के रूप में वरण किया जाता था, उससे यह आशा की जाती थी कि वह ध्रुव रूप से राष्ट्र का शासन करेगा उसे किसी निश्चित अवधि के लिए राजपद नहीं सौंपा जाता था, इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि "हे राजन् तु सुप्रसान रूप से राष्ट्र में दसवीं अवस्था तक शासन करता रहे।⁶ वैदिक काल में राजा का वरण किस तरह किया जाता था, इस सम्बन्ध में हमें कोई निर्देश ऋग्वेद में नहीं मिलते परन्तु इस काल में सामान्यतः राजतन्त्र का ही उल्लेख मिलता है। 'राजन्' शब्द का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। राजा को 'जन का रक्षक' (गोप्ता जनस्य) तथा दुर्गों का भेदन करने वाला (पुराभंता) कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के वातावरण में सेना और जाति का नेतृत्व करने के लिए राजा नामक संस्था का उदय हुआ। इस समय राज्य छोटे होते थे तथा एक राज्य में सामान्य तौर पर एक ही जन के लोग रहते थे। राजा स्वयं युद्धों में जन का नेतृत्व करता था। प्रारम्भ में उसकी स्थिति कबायली मुखिया की होती थी। कालान्तर में 'सम्राट' शब्द का उल्लेख तथा 'विश्वस्य भुवनस्य राजा' (सम्पूर्ण संसार का राजा) की अवधारणा से स्पष्ट हो जाता है कि राजपद अत्यन्त गौरवशाली एवं प्रतिष्ठित समझा जाने लगा था।

पैतृक राजतन्त्र ही सामान्य शासन प्रबन्ध के रूप में प्रचलित था, लेकिन ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि परिस्थिति के अनुसार प्रजागण राजवंश या सामन्तों में से किसी उपयुक्त व्यक्ति को राजा चुन लेते थे। गैल्डनर ने माना है कि राजा का चुनाव तो केवल औपचारिक था, लेकिन इससे भी पता चलता है कि लोगों की कुछ आवाज थी।⁷

राजा का पद इस समय दैवी नहीं समझा जाता था। यद्यपि राजा के लिए राजन् शब्द मिलता है। यही शब्द हमको आर्यों के महान देवताओं जिनमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, बृहस्पति, सोम और यम के लिए प्रयुक्त मिलता है, परन्तु इन शब्दों का हमें किसी राजा के साथ प्रयोग नहीं मिलता है। इतना जरूर है कि देवताओं की

तुलना राजा के समान की है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में एक स्थान पर अग्नि को राजा के समान आज्ञा पालन करते हुए दिखलाया गया है।⁸ एक स्थान पर अग्नि को शक्तिशाली राजा की तरह अनुयायियों सहित जाते हुए बतलाया गया है। एक अन्य स्थल पर सोम व इन्द्र को राजा की तरह बैठने को कहा गया है।⁹ इन सब उदाहरणों में देवताओं की तुलना राजा के साथ की गई है। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजा के देवत्व की कल्पना राजा द्वारा उपकृत दरबारियों तक सीमित थी। जब समिति राजा को पदच्युत कर सकती थी, तब राजा की मस्तिष्क देवत्व की कल्पना का सर्वमान्य होना आवश्यक था। अब रही बात देवताओं के राजाओं से तुलना की तो इसका कारण यह हो सकता है कि आर्य प्रत्येक देवता को राजा मानते थे, उसे उसी रूप में देखते थे।

राजा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण धारणा थी कि वह प्रजा का सेवक है प्रजा राजा को सेवा के बदले ही कर व उपहारादि देती थी। ऋग्वेद में 'बलि' शब्द का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। इसका प्रयोग भेंट तथा देवताओं को चढ़ावा के अर्थ में किया है। लगता है जन के लोग स्वेच्छा से इसे राजा को प्रदान करते थे। 'बलि' मुख्यतः अन्न के रूप में दिया जाता था। ऋग्वेदिक युग में राजा भूमि का स्वामी नहीं था। वह प्रधानतः युद्ध का नेता होता था। वह व्यक्तिगत रूप में युद्धों में भाग लेता था। परन्तु शान्ति के समय वह अपनी जनता को सम्पन्न एवं वैभवशाली बनाने का प्रयास करता था। इन कर्तव्यों के पालन करने के बदले प्रजा राजा को बलि (कर) देती थी।¹⁰ इसीलिए ऋग्वेद में राजा को बलि लेने का एक मात्र अधिकारी कहा गया है।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषामि सोमं मृशामसि।

अधो तं इन्द्रः केदलोविशः बलिहतस्करत्।¹¹

संक्षेप में हम कर सकते हैं कि राजा धर्म का रक्षक व पोषक समझा जाता था। वह प्रजा का नेता होता था और प्रजा उसका अनुगमन करती थी।

ऋग्वेदिक काल में राजा की शक्ति का स्रोत बहुत कुछ जनतन्त्रात्मक था। इसके दो कारण थे। एक तो प्रजा द्वारा राजा का निर्वाचन, दूसरा विशेष परिस्थितियों में राजा का निर्वासन। इसके अलावा ऋग्वेदकालीन राजा सभा व समिति से भी नियन्त्रित होता था। सभा व समिति राजा की निरंकुशता पर नियन्त्रण रखती थी। यद्यपि इनके गठन की पूर्ण जानकारी नहीं मिलती। लुडविग का मत है कि सभा में पुरोहित, धनिक आदि उच्च वर्ग या कुलीन वर्ग के लोग सम्मिलित होते थे, जबकि समिति में साधारण लोग होते थे। राजा हमेशा सभा व समिति को अपने पक्ष में रखने का प्रयास करता था। वैदिक उदाहरणों से पता चलता है कि समिति के प्रतिकूल होने पर राजा का अपने पद पर रहना कठिन होता था तथा राजा पूरी तरह समिति पर निर्भर था। ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख है कि राजसत्ता को हस्तगत करने की इच्छा से एक नेता ने समिति को भी अपने वश में करने की योजना बनाई थी।

आवशियन्त आ वो गतं आ वौह समितिः ददे।¹²

ऋग्वेद के एक स्थल पर आदर्श राजा ने अपनी समिति में जाने की इच्छा प्रकट की थी। अथर्ववेद से पता चलता है कि समिति राजा को पदच्युत भी कर सकती थी।

ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिव।¹³

इस ऋचा में पदच्युत राजा पुनः सिंहासनारूढ़ होने पर सबसे पहले यही आकांक्षा करता है कि मेरी समिति सदा मेरी बनी रहे। ब्रह्मण धन का अपहरण करने वाले राजा को यह श्राप दिया जाता था कि तुम्हारी समिति तुम्हारा साथ न दे।

नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वयम्।¹⁴

स्पष्ट है कि यह संस्था अत्यन्त प्रभावशाली थी, बहुधा इसके समर्थन पर राजा का भविष्य निर्भर रहता था। समिति के विरुद्ध हो जाने पर राजा की स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण हो जाती थी। समिति राजा का बहुत बड़ा सहारा मानी जाती थी। ऋग्वेद में उल्लेखित है कि एक राजा ने अपने विपक्षियों के विनाश की प्रार्थना की थी तथा दावा किया था। कि उनके चित्त, उनकी जीवन पद्धति और उनकी समिति पर आधिपत्य कर लिया है।¹⁵ समिति पूर्व वैदिक काल की राजव्यवस्था का ऐसा अंग थी कि उसके बिना राजा की कल्पना नहीं की जा सकती थी। भैंस के लिए जिस प्रकार वन था, सोमरस के लिए जिस प्रकार घड़ा था, उसी तरह राजा के लिए समिति थी।¹⁶ सभा व समिति के अलावा भी राजा पर अन्य नियन्त्रण भी होते थे। इसमें सबसे प्रमुख प्रतिबन्ध 'ऋत' की अवधारणा थी। वस्तुतः ऋत नैतिक नियम थे। देवता नैतिक नियमों का पालन करने वाले व कराने वाले होते थे। ऋत का अर्थ होता है "जगत की व्यवस्था" इसे प्राकृतिक नियम भी कहा गया है। ऋत का संचालक वरुण को माना गया है। अतः राजा अनैतिक कार्य कर ही नहीं सकता था।

ऋग्वैदिक काल की विधि तथा न्याय व्यवस्था के विषय में हमें निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। न्याय वितरण का कार्य सम्भवतः पुरोहित की सहायता से राजा करता था। सम्भवतः राजा दीवानी मुकदमों में अन्तिम अपील की प्रार्थना सुनता था परन्तु फौजदारी मुकदमों में उसे अधिक विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। वह स्वयं 'अदण्डय' या दण्ड मुक्त था। किन्तु जनता की सर्वोच्च कार्यकारिणी शक्ति होने के कारण वह 'दण्ड' या राजदण्ड का प्रयोग करता था। इस समय यह प्रथा थी कि किसी व्यक्ति को मारने वाला मृत व्यक्तियों के सम्बंधियों को नकद क्षतिपूर्ति देता था। एक व्यक्ति को 'शतदम' कहा गया है क्योंकि उसके जीवन का मूल्य एक सौ सिक्के था। हत्या में अपराधियों पर 100 गायों तक का जुर्माना किया जाता था। इस प्रकार मूल्य ठहराने की प्रथा से ज्ञात होता है कि 'जैसे को तैसा' वाले सिद्धांत से लोग ऊपर उठ चुके थे और व्यक्तिगत प्रतिकार की रीति कम हो रही थी।¹⁷

चोरी, बेईमानी, धोखा-धड़ी आदि अपराधियों का विवरण मिलता है। ऋग्वेद में एक जगह पर देवताओं तथा मनुष्यों के बन्दी गृह का उल्लेख मिलता है। लुडविग की धारणा है कि उस समय अपराधी को दण्डित करने के निर्मित अग्नि परीक्षा व जल परीक्षा की प्रथाएँ भी प्रचलित थी। वेदों में 'मध्यमाशी' शब्द मिलता है। इससे स्पष्ट है कि

ऋग्वैदिक काल में निर्णय कभी-कभी पंचो द्वारा भी करा लिया जाता था। रौथ का कथन है कि मध्यमाशी शब्द न्यायाधीश के लिए आया है। ऋग्वैदिक काल में कुछ जगह राजा का महत्वपूर्ण कार्य प्रजा रक्षण व शान्ति बनाये रखते हुए न्यायिक प्रशासन का संचालन करने की भी जानकारी मिलती है। मित्र एवं वरुण के लिए प्रयुक्त धृतवृत्, विरुत्, अग्नि के लिए वृत्पा, धर्मस्य गोप्ता इत्यादि शब्द इस बात के द्योतक हैं।¹⁸

डॉ. अल्तेकर की धारणा है कि ऋग्वेद के प्रारम्भिक काल में सम्भवतः मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि ऋग्वेद व अथर्ववेद में मन्त्रियों का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु राजकीय कार्यों में राजा की सहायत करने के लिए अनेक पदाधिकारी थे। इन्हें 'रत्नी' कहा गया है। जिनमें सेनापति, पुरोहित एवं ग्रामणी विशेष उल्लेखनीय हैं। सेनापति के कार्य सैनिक तथा पुरोहित का कार्य राजनीतिक और धार्मिक होते थे।¹⁹ ऋग्वेदिक पुरोहित से ही कालान्तर में राजमन्त्री के पद का विकास हुआ। ऋग्वेदिक काल में अनेक स्थलों पर पुरोहित अपने राजा को राजकीय विषयों पर परामर्श देता हुआ दिखाई देता है। समय समय पर वह राजकीय एवं सामुहिक कल्याण के लिए यज्ञ करता था। यही नहीं, राज्य के ऊपर विपत्ति आने पर जनहित के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल कर वह स्वयं राजा के साथ युद्ध भूमि में जाता था और भयावह युद्ध की आँधियों और तुफानों की अवहेलना करता हुआ एक ओर तो अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाता तथा दूसरी ओर राजा की विजयकामना करता हुआ दैवी शक्तियों का आह्वान करता था। वह पुरोहित के साथ-साथ राजमन्त्री, पथप्रदर्शक, दार्शनिक और योद्धा भी।²⁰ ऋग्वेद में हम ग्रामणी, सूत, रथकार और कर्मार के नाम भी सुनते हैं। राज्यभिषेक के अवसर पर ये सब उपस्थित रहते थे। इसमें ग्रामणी तो गांव का मुखिया था। यह एक ओर राजा का पदाधिकारी होता था, दूसरी ओर प्रजा का प्रतिनिधि। गांव में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखता था तथा प्रजा के सुख-दुःख की बात राजा तक पहुँचाता था। राजसभा में सूत, रथकार और कर्मार को भी प्रतिनिधित्व मिलता था। अभिषेक से पूर्व राजा इन सब की पूजा करता था। ऋग्वेदिक काल में रत्नी की पूजा लोकमत के सम्मान का ज्वलन्त उदाहरण है।²¹ स्पश (गुप्तचर), दूत तथा पुरप नामक अन्य कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है। जिनका उपयोग राजा करता था। पुरप दुर्गपति होते थे। स्पश राजा को प्रत्येक महत्वपूर्ण बात से अवगत करवाते थे। दूत के कार्य राजनीतिक थे। समय-समय पर सन्धि-विग्रह के प्रस्तावों को लेकर अन्य राज्यों में जाते थे। ये समस्त पदाधिकारी अपने कार्यों के लिए राजा के प्रति उत्तरदायी थे। इसके अतिरिक्त और भी राजकर्मचारी रहे होंगे। परन्तु उनका उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता।²²

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य है वैदिककालीन राजतंत्रात्मक व्यवस्था का अध्ययन करना। आर्यों ने किस तरह राजनैतिक व्यवस्था स्थापित करने के लिये राजा नामक संस्था की स्थापना की। राजा के अधिकार व कर्तव्य निर्धारित किये। राजा निरकुंश न हो इसके लिये

उस पर नियंत्रण के प्रावधान किये। राजा का पद धीरे-धीरे शक्तिशाली होता गया। उत्तर वैदिककाल तक राजाओं की उपाधियाँ राजाधिराज, सम्राट व एक राट जैसी होने लगी।

निष्कर्ष

इस तरह देखते हैं कि राजा सर्वाधिकार सम्पन्न होते हुए भी स्वतंत्र नहीं था वह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों से बंधा हुआ होता था। सर्वप्रथम राजा स्वयं धर्म के अधीन होता था। राजा स्वयं धर्म का पालन करता था और प्रजा से भी धर्म का पालन करवाता था। अधिकतर कानूनों का स्रोत धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराएँ थी। राजा उन्हीं के अनुसार आदेश व आज्ञा निकालता था। राजा सदैव स्वर्ग व नरक का ध्यान रखता था। ऋग्वैदिक काल में राजा का वरण किया जाता था परन्तु उत्तरवैदिक काल में राजतान्त्रिक शासन व्यवस्था काफी सुदृढ़ हो गई। अब राजा का पद वंशानुगत होता जा रहा था किन्तु युवराज तथा उत्तराधिकारी की नियुक्ति के समय प्रजा की सहमति का ध्यान रखा जाता था। साधारणतः वैदिक राजा स्वेच्छाचारी या अत्याचारी भी बन जाता था तो प्रजा की समिति को उसे हटाने का नैतिक व धार्मिक अधिकार प्राप्त था। उत्तर वैदिक काल तक आते आते शक्तिशाली राज्यों का विकास होने लगा। अब पुराने कबीले या छोटे जन लुप्त हो गये। वैदिक साहित्य से प्रकट होता है, कि राजा का दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त उत्तरोत्तर दृढतर होता गया। सर्वप्रथम इसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। उसमें एक स्थान पर राजा पुरु घोषणा करते हैं कि मैं इन्द्र हूँ, मैं वरुण हूँ। इसी प्रकार अथर्ववेद में परीक्षित को मनुष्यों में देव कहा गया है। ब्राह्मणकाल में यज्ञों की महत्ता बढ़ी और लोगों को विश्वास हो गया कि अश्वमेघ और वाजपेय यज्ञों को करने से राजा देवसम हो जाता है। उत्तर वैदिक काल तक आते-आते राजा के अधिकारों में वृद्धि होती गई। अब वह एक विस्तृत भू-भाग का एकछत्र शासक होने लगा। अब उनकी उपाधियाँ राजाधिराज सम्राट, एकराट जैसी होने

लगी। अथर्ववेद में एकराट सर्वोच्च शासक को कहा गया है।

अंत टिप्पणी

1. ऋग्वेद 10.1.73
2. ऋग्वेद 10.124.8
3. अल्तेकर, डॉ. ए.एस. : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारती भण्डार, लीडर प्रेस प्रयाग, संवत् 2004 पृ. 70
4. अथर्ववेद 3.4.2
5. अथर्ववेद 6.87.1-2, 6.88.1-2
6. अथर्ववेद 3.4.7
7. महाजन, वी.डी.: प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1989, पृ.-102
8. ऋग्वेद 4.4.1
9. ऋग्वेद 9.7.5, 10.43.2
10. महाजन, वी.डी.: प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1989, पृ. 103
11. ऋग्वेद 10.173.6
12. ऋग्वेद 10.166.4
13. अथर्ववेद 6.88.3
14. अथर्ववेद 5.19.15
15. ऋग्वेद 10, 196.4
16. ऋग्वेद 9, 92.6
17. महाजन, वी.डी.: प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1989, पृ. 104-06
18. अथर्ववेद 4.8.2
19. अल्तेकर, डॉ. ए.एस. : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, संवत् 2004, पृ. 74
20. पाण्डेय, विमलचन्द्र : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 1919, पृ.-113
21. वही पृ. -113-14
22. श्रीवास्तव, के.सी. : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 1991, पृ. 67